International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 04-08-2019; Accepted: 05-09-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 6; November 2019; Page No. 09-11

संत कवयित्री मीराबाई की भक्ति और सामाजिक परिप्रेक्ष्य

कंचन लता देवी [1], प्रेम सुमन शर्मा [2]
[1, 2] हिन्दी विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

मीराबाई हिन्दी काव्य जगत की उन महान नारी संतों में से एक है जिन्होने सर्वप्रथम एक ही समय में राजसत्ता, धर्मसत्ता, पितृसत्ता को चुनौती दी। मध्यकाल में ऐसा ही कोई शासन या राजसत्ता हो जो धर्मनिरपेक्ष रही हो। राणाशाही शासन भी इससे अभिन्न नहीं है संत मीराबाई को इसी राणाशाही के भीतर रहकर संघर्ष करना पड़ा। अन्य भक्तों की अपेक्षा मीराबाई के आनन्द में नाचने की बात अधिक कही है, इस कारण उन्हें परिवार और समाज की विरोध प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ा होगा उस समय के सामाजिक विरोध का चित्रण इस पंक्ति में किया गया हैः–

'' घुँघरूँ बाँध मीरा नाची रे पग घुँघरूँ।
लोग कहें मीरा हो गई बावरी सास कहें कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणा जी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी रे।''[1]

मीरा के पद एक ऐसी काव्य परम्परा का प्रतिनिधि करते हैं जिसमें नारी का उल्लास स्वाधीन और सुखी जीवन बिताने की आकांक्षा व्यक्त हुई।

मीराबाई के हृदय में बचपन से ही प्रभु की मूरत बस चुकी है। उमर के साथ–साथ प्रभु का प्रेम बीज अंकुरित होकर कब विशाल वृक्ष धारण कर लेता है। मीरा को सध ही नहीं होती है। उनकी दृष्टि प्रभू दर्शन के नित तड़पती रहती है। प्रभु की पायल की धुन से घायल मीरा का हृदय प्रेम पीर में भटकता ही रहा। बाल्यावस्था में गिरिधरनागर की मूरति देख उनके मन में प्रभु के प्रति जो अनुराग उत्पन्न हुआ और उनसे मिलने की उत्कण्ठा ने कभी हार नहीं मानने दिया। उन्होंने भक्ति का जो अलख जगाया वह आज भी विश्व हृदय में प्रेम प्रकाश भर देता है। प्रारम्भ में मीराबाई के पारिवारिक जनों ने इस आचारण का निहितार्थ समझाते हुए कहा होगाः–

'' लाजै पीहर, सासरा, भाई तणो मोसाल।
सबही लाजै मेड़तिया जी, यासु बुरा कहे संसार।।''[2]

इसका उत्तर उन्होंने बड़ी दृढता से दिया वह चयनधर्मी विवेक और निर्भीकता का प्रमाण हैः–

'' चोरी करां न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालतां, झक मारौ संसार।।''[3]

सती प्रथा उस समय समाज का आवश्यक अंग था। इस सामाजिक आडम्बर को मानना अनिवार्य था। भोजराज की मृत्यु के समय जब उन पर सती होने के लिए दबाव बनाया जाता है, तब वे सती होने से इनकार करती हैं और कहती हैः–

'' मीरा के संग लग्यौ हरि को, ओर संग सब अटकपरी।
गिरधर गास्याँ सती न होस्याँ, मन मोहयों धननामी।।''
जेठ बहू को नातो नाहीं, राणा जी म्हे सेवक थे स्वामी।।[4]

अनेक मान्यताओं के अस्वीकार के कारण जो कलह धीरे–धीरे सुलग रही थी। वह सती न होने के कारण प्रचण्डता से धधकने लगी और राजपरिवार की सारी कुटिल और विरोध करने वाली शाक्तियों इकठठी हो गयी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मीरा के वैंधव्यकाल की कठोरतम और बर्बरतापूर्वक यातनाओं में एक विष–पान की है। मीराबाई द्वारा राणा को सम्बोधित अनेक पदों में उनकी अन्तर्निहित मनोव्यथा व अक्रोश का स्वर ही स्पष्टतः मुखरित हुआ है। एक विधवा नारी के लिए भले ही वह राजकुल की वधु क्यों न हो, यह संघर्ष और विरोध कितना मर्मान्तक रहा होगा यह कल्पना से परे है।

तत्कालीन समाज में मीराबाई को एक विद्रोही माना गया क्योंकि उनके धार्मिक क्रिया–कलाप किसी राजकुमारी और विधवा के लिए स्थापित परम्परा नियमों के अनुकुल नहीं थे वह अपना अधिकांश समय कृष्ण के मन्दिर और साधु–सन्तों व तीर्थ यात्रियों से मिलने तथा भक्ति पदों की रचना करने में व्यतीत करती थी। मीराबाई बाह्य आडम्बरों, अन्धविश्वासों पर कबीर की तरह खुलकर प्रहार नहीं करती, किन्तु अपने प्रति हो रहे अत्याचार क विरोध निडरता पूर्वक करती है और कहती है–

'' मैं तो हरि चरणन दासी, अब मैं काहे को जाऊँ कासी।
घट ही में गंगा, घट ही में जमुना, घट–घट है अविनासी।।''[5]

मीराबाई सांसरिक बन्धन को मिथ्या मानती है गिरिधर गोपाल के प्रेम में समाज द्वारा दी गई नारीत्व के चिन्हों को नष्ट करने में जरा भी संकोच नहीं करती हैः–

'' चुडियाँ फोरूँ माँग बिखेरूँ, कजरा मैं अरू धोय री।
निसि वासर मोहिं विरह सतावे, कल न परत पल मोय री।।''[6]

डॉ0 सी0एल0 प्रभात का मत है कि–'' मीरा का व्यक्तित्व कबीर की तरह आघातप्रिय, दुर्दम्य, मस्ती तथा नेतृत्व और निर्देशन की अपराजेय आत्मशक्ति से मण्डित नहीं था। निर्दून्दता उनमें भी थी किन्तु नारी सुलभ समर्पण की कोमल भावना ने उसे उदण्ड होने नहीं दिया था। अत एव मीरा द्वारा कबीर के समान पूर्व प्रचलित मंत्रों का खण्डन सीधे शब्दों में कही नहीं हुआ, वे स्वर आराधना का स्वर थी, उनका जीवन ही उनका सन्देश समाज के लिए कर्तव्यपथ का निर्देशन उनके पास नहीं था।''[7] पाँच सौ वर्ष पूर्व मध्यकाल के परम अशान्त, विग्रह पूर्ण सामन्ती समाज में जन्म लेने वाली कन्या मीराबाई की पाठशाला उनका उदारकुल, चतुर्भज मन्दिर, लोक जीवन की अंकुरित साहसिक उदार, धार्मिक परम्पराए ही हो सकती थी। वे प्रकृति से कवि थी प्रत्युन्मति वाली भावुक और आस्थावान। यह देखने की बात है कि आस्थावान होने के कारण अपने समय और सामन्ती समाज के बीच दुर्द्रव

आत्म–संघर्ष में अपराजित रहीं।

मीरा के वापस राजमहल लौटा लाने की कोशिशों में किसी प्रकार का लगाव–जुझाव नहीं, झूठी मान–मर्यादा की सामन्ती रूढ़िवादी जकडन है। अन्तिम समय में रणछोड़ जी में समा जाने का संकेत आत्महत्या का है। जिस पर अध्यात्मिकता का रंग चढ़ाया गया है। मीरा विद्रोह की करूण परिणति भारतीय जीवन में स्त्री की दुखद हीन और दयनीय स्थित को भरपूर प्रमाणित एवं प्रकाशित करता है।

'' निर्गुण भक्त संतों की सबसे महत्वपूर्ण आयाम एकत्व की भवना थी। जिसमें मानव को एक ऐसे विश्वव्यापी धर्म के सूत्रों में निबद्व करना जहां जाति पाँति वर्ग और वर्ग सम्बन्धी भेद न होकर साधना का यह द्वार सबके लिये उन्मुक्त था। इस क्षेत्र में हिन्दू मुसलमान का भेद भी विलुप्त हो गया और भक्ति के क्षेत्र में सब समान प्रभावित हुये। निर्गुण भक्ति पंत्रतत्र है– सहज साधना सन्तों की भक्ति प्रमाण आनन्द और शान्ति में शुद्ध अन्तः करण की वह स्वाभाविक शक्ति है जहां कृत्रिमता स्वतः विलीन हो जाती है। सहज साधना का यह मार्ग सर्वथा अभिनव और क्रान्तिकारी था। इसने धार्मिक जीवन की दुरूहताओं का सदैव के लिये हटा दिया था।''[8]

मीरा भक्ति को एक नया अर्थ दिया। समूचे भक्तिकाल में उनका व्यक्तित्व सबसे विलक्षण है। केवल चैतन्य महाप्रभु से उनकी तुलना हो सकती है। भाव विभोर होकर कीर्तन करना, नाचते हुए होशो–हवाश खो देना। भक्तिकाल मीरा से एक नया अर्थ पाता है उनके काव्य में जहां कृष्ण का रसमय प्रेम है परम्परा से हटकर देखे तो मीरा के काव्य में संसारिक विपत्तियों और विडम्बनाओं से मुक्ति के लिऐ व्याकुल, भयातुर पुकार भी है। जैसे मीरा की भक्ति वैयक्तिक है, पीड़ाएं और कष्ट भी वैयाक्तिक है। उनकी अपार लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि जनसाधारण उनकी वैयक्तिक पीड़ाओं और कष्टों से आसानी से जुड़ जाता है और उसे अपने काष्टों से मुक्ति का रास्ता भी उनके पदों में दीखता है।

मीरा के काव्य में और जीवन में कही कोई पराजय कोई उदासी, कोई दंश कोई पछतावा नहीं, किसी की भर्त्सना करने की इच्छा नहीं वे अखण्ड रूप और सौन्दर्य की सृष्टि करती है, जहां कृष्ण है वहां हरि के आने की पदचाप सुनाई देती है। राणा का परिवार छूट गया है तो साधु सन्तों का परिवार मिल गया है। मीरा इस परिवार मे नई सामाजिकता की तलाश कर लेती है। यह मध्ययुग की अकेली डरी वर्जनाओं की चहारदीवारी में घिरी स्त्री की बाहर निकालने की यात्रा शुरू होती है। ऐसी यात्रा जो बाद में लोक सन्तों के भरोसे से सानन्द सम्पन्न होती है। इस यात्रा में मीरा लोक में लगातार रहती है मीरा विभिन्न जनसमुदायों की भाषा सीखने की अद्भुत क्षमता रखती है। कला का अभाव ही उनकी सबसे बड़ी कला है।

संत कवियित्रियों का हृदय इतना निर्मल था कि उन्हे समाज से प्रताड़ना मिलने के बाद भी समाज से कोई शिकायत नहीं भक्ति इतनी पवित्र एवं गहन की उन्हें कोई बंधन आबद्व नहीं कर सका। उनकी कृतियां इतनी अद्भुत कि साहित्य जगत में एक नया मार्ग प्रशस्त करती है। भजनान्द में उन्मुक्त इतनी दूरनिकता जाती थी कि उन्हें एक भक्त जन पवित्र मन्दिर की साक्षात देवी के रूप में सम्मान देते थे। उनका चरित्र इतना उज्जवल कि बड़े–बड़े भक्त उनके प्रभाव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। मीरा की अचल भक्ति ही थी कि संसार में कृष्ण के साथ उनका प्रेम हमेशा के लिये अमर हो गया। लेकिन पति और कुल को त्यागा लेकिन अलोकिक पति के लिए अपने आत्मस्वाभिमान को ताक पर रखकर अपना सर्वस्व प्रभु प्रेम पर न्योछावर कर दिया।

मीराबाई साहित्य संगीत एवं भक्ति की त्रिवेणी है उनके गीतों में केवल उन्हीं की भक्ति नहीं बोलती विश्व की आधी मानवता का दुख दर्द और विद्रोह भी मुखरित होता है। मीरा के काव्य की लोकप्रियता का कारण लोक धर्मिता है। उनकी विरह वेदना लोकभक्ति के जल पर ही कंठ से कंठ तक यात्रा करके शताब्दियों पार की है न तो किसी राजदरबार का संरक्षण प्राप्त करके आयी और न ही किसी विशेष धर्म सम्प्रदाय ने अपना योगदान दिया। लोकधर्मों संगीत प्रेमियों और भक्तो का है।

महादेवी वर्मा जी ने अपने व्याख्यान में कहा किः– '' मैने गुजरात र्नाटक, बंगाल तथा समूचे दक्षिण तथा उत्तर भारत का भ्रमण किया है। देश के पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण में सर्वत्र मैने मीरा के पद सुने है। मीरा के पदों की उड़ान समचे भारतीय आकाश में व्याप्त है मानों कोई पक्षी असीम आसमान में उड़ रहा हो..... .....वे राजस्थान की है, गुजरात की है, बंगाल की है, समचे भारत की हैं। भक्ति आन्दोलन की प्रेरक शक्ति है। जिसने ब्रहमण और शुद्व का भेदभाव ही मिटा डाला। अतः वे सभी जातियों की है सभी धर्मों की है सर्वकालीन एवं सर्वदेशीय है।''[9]

'' मीराबाई के सिद्वान्त, इस कारण जगत के प्रति विरक्तिमय और श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्तिमय दीख पड़ते है। इन दोनों प्रकार की भावनाओं के प्रभाव उनकी रचनाओं पर हमें सर्वत्र लक्षित होते है। उनके विचारानुसार सारा द्रश्यमान संसार नश्वर और अनित्य है, जिस शरीर को पाकर हम अभिमान प्रशर्नन करते है, वह भी अन्त में मिटटी में मिल जाने वाला है। ''मनुष्य के सभी दैनिक व्यवहार चहर का बाजी अर्थात चौसर का खेल वा चिड़ियों के उस खेल के समान है, जो सांध्यकाल के आते ही उनके बसेरे पर चले जाने के कारण बन्द हो जाया करता है। इस कारण उनका कहना है कि आवागमन से मुक्ति पाने के लिए तीर्थवृत करना, काशी करवत लेना अथवा भगवा पहन कर अपना दरबार छोड़ सन्याजी हो जाना मात्र व्यर्थ है। संसार की इस दुनिया का अनुभव कर अत्यन्त दुखित वे रो पड़ती है। वे चाहती है कि उन्हीं की भांति सभी इस कटुसत्य से परिचित होकर अपने–अपने बचाव के लिऐ यत्न करने लग जायँ।[10]

'' मीराबाई ने यत्किचिंत राजकुल की मर्यादाओं को स्वीकार करते हुए ही भक्तों एवं संतों का सत्संग कर अपनी भक्ति–क्षुधा शान्त की परन्तु जब राजकुल के नियम उसमें बाधक बनने लगे राजा का व्यवहार उनके लिए असहय होने लगा तो मीरा जी ने इन सबको तिलांज्जलि दे दी। भक्ति की मुख्य कवियत्री मीराबाई के इष्टदेव गिरधर नागर, श्रीकृष्ण प्रसिद्व है और वे उन गिरधर गोपाल के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपना इष्ट मानती हुई नहीं जान पड़ती हैं वे उन्हीं की सुन्दर छवि के वर्णन तथा गुणगाान में सर्वदा लीन रहना पसन्द करती है। मीराबाई अपने इष्टदेव को ब्रजवीर, यादुनाथ, जसुमति कौबाल आदि नामों से सम्बोधिन करती थी। इस प्रकार की भक्ति दे समाज को रास नहीं आ रहा था। जो हर प्रकार से मीराबाई को प्रताड़ित करने से पीछे नहीं हटती थी। समाज की झूठी मान–मर्यादा में कोई विश्वास नहीं था। वह अपने धुन की पक्की थी कि कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त कर्ता मन नहीं लगा।[11]

निष्कर्ष

मीराबाई ने सहा अधिक कहा कम। समाज से असहानीय प्रताड़ना का घूँट पिया। वह विरह–वेदना के रूप में संसृत होकर अविछिन्न धारा बन गई। प्रभु–प्रेम में विलीन भक्त मीराबाई को मिथ्या समाज की बन्दिशे छू भी नहीं पायी और वे हमेशा के लिए अमर हो गई। अखिल जगत में यदि किसी भी समष्टि की गोद में प्राचीन सुदृढ़, सभ्य शाश्वत, सत्य प्रेरणादायी विरासत है तो उसे वे नवीन विकास और अभिप्रेरणा को साधन निर्मित करते है। इस पर दृष्टिनिक्षेप किया जाय तो भारत विश्व के किसी भी समाज से अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में अधिक समृद्व और मार्गदर्शी हैं।

सन्दर्भ सूची

1. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन, पृ024 प्रथम संस्करण–2018।
2. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन पृ0–55।
3. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन पृ0–55।
4. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन पृ0–56।
5. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन पृ0–25।
6. मीराबाई, अजय तिवारी, अनन्य प्रकाशन पृ0–25
7. मीरा जीवन और काव्य ;खण्ड–2द्ध डॉ0 सी0एल0 प्रभात, पृ0–278 राजस्थानी ग्रन्थागार, प्रकाशन राजस्थान, प्रथम संस्करण 1999।
8. साहित्यशिल्पी मीराः– सामन्ती अभिजात्य की विद्रोही प्रवतंत्र ;अटेजाद्ध
9. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
10. मीरा श्रृदाज्जलि, महादेवी वर्मा, महिला एण्ड उदयपुर 1975।
11. मीराबाई की पदावली, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ0–33।
12. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 21 वां संस्करण 2002।
13. भक्तिमती मीराबाईः– जीवन और काव्य
14. डॉ0 लालबहादुर सिंह चौहान पृ0–121, सावित्री प्रकाशन आगरा
15. वर्ष 2006।